

○.....
 धार्मिक साहित्य ज्ञान एवं संस्कृति के नाम पर उस धारा का प्रवाह करता है जो न सिर्फ हमारी शिक्षा एवं समाज व्यवस्था की आधुनिक समझ से अलग है बल्कि विरोधी भी है। इस प्रकार के साहित्य के माध्यम से 'जन शिक्षा' का समानान्तर आंदोलन चलाया जा रहा है। इस प्रकार के साहित्य की लाखों प्रतियां छपती एवं बिकती हैं तथा संत महात्माओं के बढ़ते प्रवचन इसका प्रमाण हैं। तथ्य यह भी है कि इसमें अन्तर्निहित विरोधाभासों की तरफ भी सामान्य जन का ध्यान ही नहीं जाता। यह हमारे सामाजिक अनुकूलन की प्रक्रिया को साबित करता है। धर्म के माध्यम से हमारा इतना बारीक अनुकूलन होता है कि वह सोचने समझने की क्षमताओं पर पूर्णतः आच्छादित हो जाता है और सोचने-समझने के विवेक सम्मत तरीकों से दूर ले जाता है। इस प्रकार के अनुकूलन से व्यक्ति धार्मिक मान्यताओं एवं उनके अनुरूप व्यवहार की दुविधा में फंसा पाता है। इसकी बदौलत समाज के खासवर्ग अनुकूलन की ऐसी प्रवृत्ति में अपने आपको फंसा पाते हैं कि उन्हें भी यह अपनी नियति लगने लगती है और अपनी स्थिति को बदलने से न सिर्फ उन्हें रोकता है बल्कि इस पर सवाल उठाने से भी रोकता है। ये साहित्य खास प्रकार के समाज एवं राजनीति का पोषक है। आवश्यकता यह है कि इसमें निहित समाज एवं राजनीति के स्वरूप की पड़ताल की जाए।

हमारे समाज में और शायद सभी समाजों में बाल्यकाल से ही मतारोपण आरंभ हो जाता है। इसमें धार्मिक ग्रंथ (धार्मिक शिक्षाएँ) महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। धार्मिक साहित्य को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझने पर किसी को भी सहज ही समझ आयेगा कि मानव समाज में ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया ऐतिहासिक एवं विकासमान है। पाउलो फ्रेरे ने कहा है, "ज्ञानने की प्रक्रिया ऐतिहासिक होती है और मनुष्य जाति के इतिहास को जाने बिना जानना या जानकारी असंभव है। कहने का तात्पर्य यह है कि इतिहास का सामाजिक अनुभव इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य के रूप में हमने ज्ञान सृजित किया है। इसी कारण हमारे सृजित ज्ञान का पुनः सृजन होता है और नया ज्ञान सामने आता है। यदि ज्ञान की सीमाएं छोटी पड़ने लगती हैं, यदि कल का ज्ञान अप्रासंगिक होने लगता है, तब हमें नये ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इसका मतलब यह हुआ कि ज्ञान की ऐतिहासिकता होती है। ज्ञान कभी भी स्थिर नहीं होता। यह गतिशील है, इसकी प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है।" लेकिन यदि इस प्रकार का साहित्य आचार के सिद्धांतों को सिर्फ और सिर्फ सिद्धांत के तौर पर रखता है तो यह व्यक्ति की स्वायत्त चेतना एवं क्षमताओं का भी विरोध है। जिसमें कि यह मानकर चला जाता है कि व्यक्ति अपनी क्षमताओं और सामाजिक अनुभव से ज्ञान निर्माण में सक्षम नहीं है। इस प्रकार का ज्ञान न सिर्फ व्यक्तियों के सोचने-समझने की क्षमताओं का विलोप करेगा बल्कि धर्मभ्रू व्यक्तियों का निर्माण भी करेगा। क्योंकि यहां मनुष्य के मौलिक स्वभाव का भी नकार है। अतः उसे प्रतिबंधित करने के उपदेश भी दिये जाते हैं।

ज्ञान विज्ञान के संदर्भ में कही गयी ढाई-तीन हजार साल पुरानी बातें कितनी प्रासंगिक हैं, इन धार्मिक शिक्षाओं की प्रासंगिकता को परखने की दृष्टि से यह लेख श्रृंखला आरंभ की गई है। अभी भी व्यापक समाज ज्ञान-विज्ञान के इस आधुनिक युग में इन पर यकीन करता है। और इसे बच्चों में भी हस्तान्तरित करने की कोशिश भी करता है।

सदाचार के नाम पर अशिक्षा

□ प्रेमचन्द गांधी

हिन्दू धर्म ग्रंथों को यूं तो अपौरुषेय कहा गया है। लेकिन अनेक धर्म ग्रंथों की असंख्य शिक्षाएं उनके ब्राह्मणवादी और पुरुष-वादी स्वरूप को सिद्ध करती हैं। इक्कीसवीं सदी में आधुनिकता के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा और धर्म प्रवचन का कारोबार भी तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में यह देखना खासा दिलचस्प हो सकता है कि किस प्रकार कथित धार्मिक शिक्षा के नाम पर हमारे 'पूज्य' कहे जाने वाले धर्मग्रन्थ और 'सेटेलाइट' संत जनता में अज्ञान, अशिक्षा और अंधविश्वास फैला रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस लेखक ने स्वामी

रामसुख दास की पुस्तक 'गृहस्थ जीवन के बारे में' के कुछ अंश अनायास ही पढ़ लिये थे। तब सोचा था कि कभी अवसर मिलने पर ऐसी पुस्तकों पर विस्तार से लिखा जाना चाहिए। दरअसल ऐसी पुस्तकें हमारे सामाजिक जीवन में आकण्ठ धंसे उन अंधविश्वासों को परिपुष्ट करती हैं जो समाज में वैज्ञानिक चेतना के विकास में बाधक होती हैं।

धर्मग्रंथों की सदाचार संबंधी शिक्षाओं के व्यवस्थित अध्ययन के प्रयास में यह सामने आया कि कथित संत महात्माओं की

शिक्षाओं के मूल में वस्तुतः हिन्दू धर्म ग्रंथ हैं। कुछ ऐसी पुस्तकें इस क्रम में हाथ लगीं जो लोक में प्रचलित अंधविश्वासों के मूल स्रोतों तक ले जाती हैं। 'गीता प्रेस' से प्रकाशित एक ऐसी ही पुस्तक है 'क्या करें क्या ना करें?' इसके लेखक हैं राजेन्द्र कुमार धवन। इसके प्राक्कथन में लेखक ने लिखा है, "हिन्दू संस्कृति अत्यंत विलक्षण है। इसके सभी सिद्धांत पूर्णतः वैज्ञानिक और मानव मात्र की लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति करने वाले हैं।" हम जानते हैं कि हिन्दू ही नहीं प्रायः सभी धर्म सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर सामाजिक क्रियाकलापों और कर्मकाण्डों तक को अपने पौराणिक धर्म ग्रन्थों के अनुसार विज्ञान सम्मत बताते हैं। धर्म ग्रन्थों की विज्ञान की समझ कैसी है, इसे गैलीलियो से लेकर डार्विन तक अनेक महान वैज्ञानिक भोग चुके हैं। सृष्टि की कोई भी खोज या वैज्ञानिक अविष्कार ऐसा नहीं है, जिसके बारे में धर्म ग्रन्थों में पहले से नहीं लिखा गया हो। समस्या यहीं पैदा होती है, विज्ञान अपने प्रयोग और अनुसंधान से एक रहस्य से परदा उठाता है और धर्मप्राण पुरोहित वर्ग उसे धर्मनिष्ठ मानकर ईश्वर की बनाई व्यवस्था में मानवीय हस्तक्षेप कहकर खारिज कर देता है। आधुनिक विज्ञान और धर्म ग्रन्थों के कथित पौराणिक विज्ञान में यही अन्तर है कि आधुनिक विज्ञान जिसे सप्रमाण सिद्ध करता है, पौराणिक विज्ञान उसे शास्त्र सम्मत या शास्त्रोक्त कह कर पल्ला झाड़ लेता है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में तो कहा भी गया है कि शास्त्रों के संबंध में स्वयं शास्त्र ही प्रमाण हैं, शास्त्रों के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य की लौकिक उन्नति उसके सर्वांगीण विकास में है। वैज्ञानिक चेतना से संपन्न, सामाजिक उत्तरदायित्व को समझकर आचरण करने वाला, स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से सक्षम समर्थ व्यक्ति ही लौकिक रूप से उन्नत मनुष्य हो सकता है। मनुष्य की पारलौकिक उन्नति की अवधारणा आधुनिक विज्ञान के अनुरूप नहीं है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखें तो इसका एक अर्थ यही हो सकता है कि मनुष्य एक बेहतर जीवन जीते हुए राग-द्वेष से मुक्त होकर एक निश्चितता के साथ मृत्यु को प्राप्त हो सके लेकिन धर्म ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य की लौकिक और पारलौकिक उन्नति तभी संभव है, जब व्यक्ति धर्म शास्त्रों के अनुरूप आचरण करे। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से ऐसा आचरण अंधविश्वास पूर्ण है और धर्म ग्रन्थ इस प्रकार एक अंधविश्वासी मनुष्य का निर्माण करते हैं। लेखक ने प्राक्कथन में आगे लिखा है, "मनुष्य मात्र का सुगमता से एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो इसका जितना गंभीर विचार हिन्दू संस्कृति में किया गया है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के संपर्क में आता है और जो जो क्रियाएं करता है, उन सब को हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि मुनियों ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित मर्यादित एवं सुसंस्कृत किया है। और उन सबका पर्यवसान परम श्रेय की

प्राप्ति में किया है। इसलिए भगवान ने गीता में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है -

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्ततेः कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिर्हादृसि॥

(गीता 16/23-24)

अर्थात् जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शांति) को और न परमगति को ही प्राप्त होता है। अतः तेरे लिए कर्तव्य-अकर्तव्य की अवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं - ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है। अर्थात् तुझे शास्त्र विधि के अनुसार कर्म करने चाहिए।

तात्पर्य है कि हम 'क्या करें, क्या ना करें?' इसकी व्यवस्था में शास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिये। जो शास्त्र के अनुसार आचरण करते हैं वे 'नर' होते हैं और जो मन के अनुसार (मनमाना) आचरण करते हैं, वे वानर होते हैं -

मतयो यत्र गच्छंति तत्र गच्छंति वानराः।

शास्त्राणि यत्र गच्छंति तत्र गच्छंति ते नराः।"

पुस्तक के प्राक्कथन के इस लम्बे अंश को उद्धृत करने के पीछे उद्देश्य यह है कि किस प्रकार शास्त्र के नाम पर हमारे आधुनिक समाज को सदियों पीछे ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। यह व्यक्ति की स्वचेतना और ज्ञान निर्माण की क्षमताओं का प्रतिरोध है। मनुष्य अपने विवेक से निरन्तर अपनी चेतना का विकास कर अग्रगामी होने का प्रयास करता है। जैविक विकास की प्रक्रिया में मनुष्य अपनी मेधा से सतत अवलोकन, प्रयोग और अनुसंधान से जीवन को सुगम, सहज, सरल और विकसित करने की चेष्टा करता है। इसी क्रम में पुस्तकों के रूप में उपलब्ध ज्ञान से व्यक्ति स्वयं के ज्ञान को न केवल समृद्ध करता है, बल्कि चिन्तन और अनुशीलन से उसे क्रमिक रूप से विकसित भी करता है। हमारे धर्म ग्रन्थ या धर्म शास्त्र मनुष्य की सहज विकास प्रक्रिया को अपने दकियानूसी ज्ञान से बाधित करते हैं।

आप देख सकते हैं कि किस प्रकार शास्त्रों को जीवन से अधिक वरीयता दी गई है और शास्त्रोक्त आचरण न करने वालों को वानर की संज्ञा दी गई है। दिलचस्प यह भी है कि शास्त्रोक्त आचरण केवल 'नर' बनने के लिए है। ऐसे में नारी के विषय में शास्त्र मौन हैं या कहें कि नारी के लिए अलग आचार संहिता होगी जिसे शास्त्रोक्त आचरण करने वाला 'नर' तय करेगा। स्वामी रामसुख दास की पुस्तक में उदाहरण के लिए कहा गया है कि - "रजस्वला

स्त्री को घर के चौके-चूल्हे से दूर रहना चाहिए और यदि बलात्कार या प्रेम के कारण कोई युवती या स्त्री गर्भवती हो जाती है तो गर्भपात नहीं करवाना चाहिये, ऐसी सन्तान को जन्म देकर अनाथालय में छोड़ देना चाहिए।” दुर्भाग्य से ऐसे विषयों में धर्मगुरु और धर्म ग्रन्थ बलात्कारी पुरुष के प्रति मौन हैं। कहीं भी स्त्री पर ऐसे अत्याचार करने वाले पुरुष के लिए दंड का प्रावधान नहीं है। अपनी ही संतान को अनाथालय में छोड़ देने की शिक्षा देकर धर्मगुरु ऐसे अवैध संतानों के लिए एक अंधकार भरा भविष्य तय कर देते हैं। और सिर्फ इसलिए कि विवाहपूर्व या बलात्कार से उत्पन्न हुई संतान का लालन-पालन कथित सामाजिक दृष्टि से अनुचित है और शास्त्रोक्त नहीं है। ये हिन्दू संस्कृति का सबसे बड़ा विरोधाभास है जिसमें अपराधी के अपराध पर बात नहीं करके सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर अपनी ही संतान को अनाथ मानने के लिए छोड़ दिये जाने की बात कही गयी है। आज के जमाने में ऐसी अंधविश्वास भरी शिक्षाएँ समाज को कहां ले जायेंगी समझा जा सकता है। बहरहाल, इस प्राक्कथन का उत्तरार्द्ध आज के समय में शास्त्रोक्त आचरण की महिमा इस प्रकार बताता है - “वर्तमान समय में उचित शिक्षा, संग, वातावरण आदि का अभाव होने से समाज में उच्छृंखलता बहुत बढ़ चुकी है। शास्त्र के अनुसार क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये - इसे नयी पीढ़ी के लोग जानते ही नहीं और जानना चाहते भी नहीं। जो शास्त्रीय आचार-व्यवहार जानते हैं वे बताना चाहें तो उनकी बात न मानकर उनकी हंसी उड़ाते हैं। लोगों की अवेहलना के कारण हमारे अनेक धर्मग्रंथ लुप्त होते जा रहे हैं। जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, उनको पढ़ने वाले भी बहुत कम हैं। पढ़ने की रुचि भी नहीं है। और पढ़ने का समय भी नहीं है। शास्त्रों को जानने वाले, बताने वाले और तदनुसार आचरण करने वाले सत्पुरुष दुर्लभ-से हो गये हैं। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक समझा गया कि एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जाये, जिससे जिज्ञासु जनों को शास्त्रों में आई आचार-व्यवहार संबंधी बातों की जानकारी हो सके। इसी दिशा में यह प्रयत्न किया गया है।

शास्त्र अथाह समुद्र की भांति हैं। जो शास्त्र उपलब्ध हुए उनका अवलोकन करके अपनी सीमित सामर्थ्य, समझ, योग्यता और समय के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। जिन बातों की जानकारी लोगों को बहुत कम है उन बातों को मुख्यतया प्रकाश में लाने की चेष्टा की गई है। यद्यपि पाठकों को कुछ बातें वर्तमान समय में अव्यावहारिक प्रतीत हो सकती हैं, तथापि अमुक विषय में शास्त्र क्या कहता है इसकी जानकारी तो उन्हें ही जायेगी।.... पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक का अध्ययन करें और इसमें आयी बातों को अपने जीवन में उतारने की चेष्टा करें।”

शास्त्रों के संबंध में एक तथ्य यह भी है कि अनेक स्थलों पर शास्त्रों में परस्पर गहरा विरोधाभास है। एक विषय पर एक शास्त्र कुछ कहता है तो दूसरा कुछ और। लेकिन आचरण के संदर्भ में विभिन्न शास्त्र क्या कहते हैं और वे आज अव्यावहारिक प्रतीक हो सकते हैं, कहकर लेखक ने शास्त्रों की उस वैज्ञानिकता से परदा उठा दिया है जो वे प्रारंभ में कहते हैं। लेखक अंततः शास्त्र को ही मान्यता देकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि शास्त्र तो इस बारे में ये कहते हैं और यदि आप इसके अनुसार आचरण नहीं करते हैं तो आप अशास्त्रेक आचरण के दोषी होकर वानर की गति को प्राप्त करेंगे। और वानर कौन बनना चाहेगा ?

इस प्राक्कथन को ज्यों का त्यों उद्धृत करने का एक कारण यह भी है कि कथित सत्साहित्य के नाम पर उपलब्ध पुस्तकों में यह उन विरल पुस्तकों में से है, जो मूल धर्म ग्रंथों के आधार पर तैयार की गई है। आचरण संबंधी पचास अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक के अंत में आधार ग्रंथों की सूची दी गई है। इस सूची में 45 स्मृतियां, 19 पुराण, 3 धर्मसूत्र, 3 उपनिषद, 2 ज्योतिष, 4 आयुर्वेद, 4 तंत्र और 7 नीति ग्रंथों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, गीता आदि 15 विविध ग्रंथों सहित कुल 105 ग्रंथ बताये गये हैं, जिनसे इस पुस्तक की रचना की गई है। प्रत्येक अध्याय में मूल संस्कृत श्लोक के साथ उसकी हिन्दी टीका दी गई है। इस प्रकार यह पुस्तक भारतीय हिन्दू धर्म ग्रंथों के आधार पर मनुष्य जीवन की दैनन्दिन आचार संहिता है, इन सदाचार संबंधी अनेक सत् शिक्षाओं में कुछ काम की हैं और कुछ नहीं। भारतीय समाज जिन अंधविश्वासों में सदियों से जकड़ा हुआ है उनके मूल में कहीं न कहीं हिन्दू धर्म ग्रंथों की कथित शिक्षाएँ भी हैं। यह पुस्तक उन मूल स्रोतों तक हमें ले जाती है जो भारतीय समाज के पिछड़ेपन के कारक हैं। यहां हम उन्हीं कथित शिक्षाओं के मूल स्रोत और आज के सामाजिक वातावरण में उनकी उपादेयता पर चर्चा करेंगे, जो भारतीय मानस को पीछे ले जाने का काम करती हैं।

कथित शिक्षाएं -

समयानुसार आचरण : हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार तीन प्रकार की संध्याएं होती हैं -

(अ) प्रातः काल की संध्या : जब अकाश में तारे हों अर्थात् भोर से पहले।

(ब) मध्याह्न की संध्या : जब सूर्य मध्य-आकाश में हो।

(स) सायंकाल की संध्या : जब सूर्य पश्चिम में चला जाये।
‘प्रातः संध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने म्य भास्कराम्।

ससूर्याम पश्चिमाम् संध्याम् तिस्रः संध्या उपासते।’

(देवीभागवत 11/16/2-3)

इन संध्याओं के अनुरूप शास्त्रों में मनुष्य को आचरण की विधियां बताई गई हैं। आज के समय में दैनन्दिन जीवन में आचरण के ये नियम-कायदे कहां तक उचित हैं जिनमें शौच से लेकर अध्ययन तक का समय निर्धारित है। शास्त्र कहते हैं 'मल-मूत्र का त्याग, दातुन, स्नान, श्रृंगार, बाल संवारना, अंजन (काजल) लगाना, दपर्ण में मुख देखना और देवताओं का पूजन - ये सब कार्य पूर्वाह्न में करने चाहिए। इस आचरण के मूल स्रोत इस प्रकार हैं -

मैत्रं, प्रसाधनं स्नानदन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्न एवं कुर्वीत देवतानाम च पूजनम्॥ (मनुस्मृति 4/152)

यही बात महाभारत (अनु.104/23), मार्कण्डेयपुराण (34/21) ब्रह्मपुराण (22/21) और स्कन्दपुराण (मा.कौ. 41/124-125) में ठीक इसी प्रकार कही गई है।

शयन, अध्ययन स्नान, भोजन, यात्रा, संभोग आदि के विषय में शास्त्रों का दृष्टिकोण आज के समय में बहुत ही अवैज्ञानिक लगता है। दोनों संध्याओं और मध्याह्न के दौरान ये सब कार्य वर्जित हैं। रात में दही खाना, मध्याह्न-अर्धरात्रि और दोनों संध्याओं में चौराहे पर रहना, अलस्सुबह-देर शाम और ठीक मध्याह्न में बाहर नहीं जाना चाहिये। दोपहर, दोनों संध्याओं में और आर्द्रानक्षत्र में श्मशान में नहीं जाना चाहिए। महाभारत (अनु. 104/27-28, 104/24 एवं 141), मनुस्मृति (4/131 एवं 140), पद्मपुराण (स्वर्ग. 55/71-72), कूर्मपुराण (उ. 16/71), मार्कण्डेय पुराण (34/73), स्कन्दपुराण (मा.कौ. 41/161), ब्रह्मपुराण (221/70), और ब्रह्मवैवर्तपुराण (ब्रह्म. 27/40) के अनुसार ये सब वर्जित कार्य हैं। और ऐसा करने से नरक की प्राप्ति होती है।

सायंकाल का समय हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार उन समस्त कार्यों के लिए वर्जित है जो आज सामान्य रूप से होते हैं। भोजन, शयन, यात्रा, स्त्रीसंग, अध्ययन या स्वाध्याय, मद्यविक्रय, वस्तुओं का आदान-प्रदान आदि कार्य सायंकाल में करना वर्जित है। शास्त्रों के अनुसार सायंकाल भोजन करने से बीमारी होती है, स्त्रीसंग से क्रूर संतान पैदा होती है, सोने से लक्ष्मी नष्ट होती है और अध्ययन से आयु का नाश होता है।

चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत्।

आहारम् मैथुनम् निद्राम् स्वाध्यायम् च चतुर्थकम्॥

आहाराज्जायते व्याधिः क्रूरगर्भश्च मैथुनम्।

निद्रो श्रियो निवर्तन्ते स्वादयाये मरणं ध्रुवम्॥

(यमस्मृति 76-77)

शास्त्रों के अनुसार कुछ स्थलों पर देर रात में नहीं दिन में भी नहीं रहना चाहिए। पीपल के पास, चौराहे पर, श्मशान, उपवन, मंदिर, जंगल और सूने घर में देर रात तक नहीं रहना चाहिए। बल्कि

शिक्षा-विमर्श

जंगल, श्मशान और सूने घर में तो दिन में भी नहीं रहना चाहिए। यह पढ़कर वह सब याद हो आया जो बचपन में हमारे दिमागों में भर दिया गया था। दोपहर को पीपल के पेड़ के नीचे से निकलते वक्त या श्मशान के नजदीक से गुजरते हुए रौंगटे खड़े हो जाते थे और भय के उपचार बतौर बरबस हनुमान चालीसा जाप शुरू हो जाता था। आज के समय में जब पुरुष काम पर और बच्चे पढ़ने चले जाते हैं तो स्त्रियों को सूना घर छोड़कर कहां जाना चाहिए ? उन वृद्धों का क्या होता है जो अकेले रहते हैं, हम जानते हैं। यह कहना मुश्किल है कि हमारे धर्म ग्रंथों की शिक्षाएं काल विशेष में कभी उपयोगी रही होंगी, जिनका आज कोई औचित्य नहीं नजर आता।

तथा चत्वर चैत्यम् न चतुष्पथसुरालयान्।

शून्याटवीशून्य गृहश्मशानानि दिवापि न॥

शुक्रनीति (3/30) के उपर्युक्त श्लोक से लेकर विष्णुपुराण (3/12/13-14), चरकसंहिता (सूत्र 8/19) और अष्टांगहृदय (सूत्र. 2/38) वह मार्ग दिखाते हैं जिस पर चलना आज के जमाने में असंभव ही नहीं बल्कि यह पुरातन पंथी, अवैज्ञानिक एवं तार्किक सोच का विरोधी भी है।

दैनन्दिन आचरण

मानव जीवन की अनिवार्य दैनिक क्रियाओं के लिए ये हिन्दू धर्म ग्रन्थ दिशा निर्देश देते हैं, मल-मूत्र त्याग से लेकर भोजन, शयन, स्नान, वस्त्र आदि के संबंध में विभिन्न धर्म ग्रंथों में अनेक निषेध और आदर्श आचार बताये गये हैं। सोने के लिए पूर्व या दक्षिण दिशा की तरफ सिर कर के सोना श्रेष्ठ माना गया है। सूने घर, मन्दिर, श्मशान और अंधेरे में सोना वर्जित है। दिन के अंतिम प्रहर से लेकर रात्रि के दूसरे प्रहर तक सोने का निषेध है। इस तरह सोने को लेकर ऐसे-ऐसे विधान बनाए गए हैं जिन पर चलना आज के जमाने में मुश्किल ही नहीं असंभव भी है।

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे । (मनुस्मृति 4/57)

न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु॥ (महाभारत, अनु.243/6)

शयन-संभोग संबंधी ऐसे आचरणों का पालन नहीं करने वालों को सात जन्मों के पाप का भागी, रोगी और दरिद्र बताया गया है।

दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगम् करोति यः।

सप्तजन्म भवेद्भोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्री कृष्ण 75/80)◆

... (जारी)